वैदिक साहित्य pdf मे प्राप्त करने के लिए टेलीग्राम एप्लिकेशन मे वैदिक पुस्तकालय या vaidicbooks सर्च करें

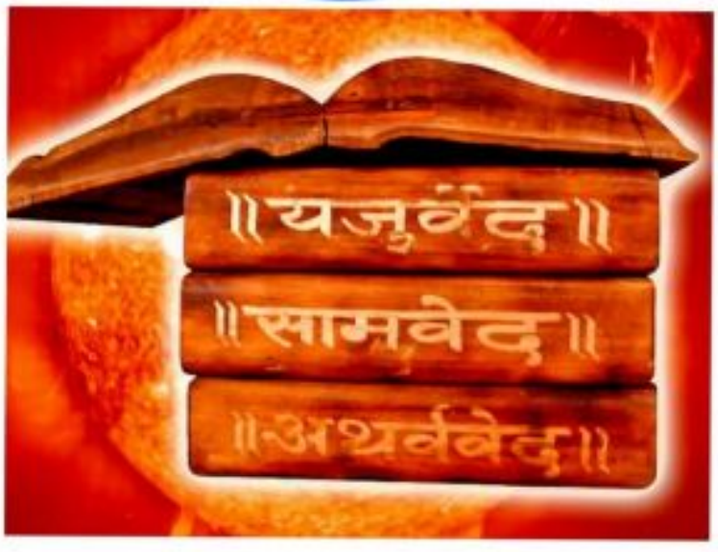

Scanned with CamScanner

॥ ओ३म् ॥

महाभारत की विशेष शिक्षाएँ

(महाभारत शिक्षा सुधा)

लेखक
स्वामी ब्रह्ममुनि

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

वैदिक पुस्तकालय

प्रकाशक : **विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द**
4408, नई सड़क, दिल्ली–110 006
दूरभाष : 23977216, 23914945
e-mail: ajayarya16@gmail.com
Website : www.vedicbooks.com

वैदिक–ज्ञान–प्रकाश का गरिमापूर्ण 94वाँ वर्ष (1925–2019)

संस्करण : 2019

मूल्य : ₹ 60.00

मुद्रक : जयमाया ऑफसैट, दिल्ली

Mahabharat Ki Vishesh Shikshayen *by* **Swami Brahm Muni**

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

पूर्व वचन

महाभारत सम्बन्धी इस पुस्तक को मैं ऐतिहासिक दृष्टि से पाठकों की सेवा में प्रस्तुत नहीं कर रहा हूँ। मैं इतिहास का विद्यार्थी नहीं हूँ। ऐतिहासिक दृष्टि से महाभारत पर अन्य विद्वानों ने पर्याप्त लिखा है, साथ इस ऐतिहासिक दृष्टि से ऐतिहासिक विद्वानों का मतभेद भी है। स्वयं महाभारत के वचन ही इसके साक्षी हैं। यथा–

मन्वादिभारतं केचिदास्तीकादि तथापरे।
तथोपरिचराद्यन्ये विप्राः सम्यगधीयते॥

(महा० अनुक्रमणिकाप० अ० 1।52)

कई विद्वान् महाभारत का प्रारम्भ मनुवंश से, कुछ आस्तीक पर्व से और अन्य विद्वान् उपरिचर की कथा से इसे ठीक जानते तथा पढ़ते हैं।

'महाभारत' के आदि या प्रारम्भ के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत हैं। परन्तु महाभारत के या महाभारतान्तर्गत श्लोकों की संख्या के सम्बन्ध में भी कहा है–

इदं शतसहस्रं तु श्लोकानां पुण्यकर्मणाम्।
उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम्॥
चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारत संहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः॥

(महा० अनुक्रमणिकाप० अ० 1।101, 102)

व्यासजी ने तो आदि महाभारत चौबीस सहस्र श्लोकों की बनाई थी जिसमें उपाख्यान, अलङ्कार, दृष्टान्त, उपन्यास, अतथ्यकथन नहीं थे, किन्तु शुद्ध इतिहास ही था। पुनः उपाख्यानों अर्थात् अलंकारों, उपन्यासों, दृष्टान्तों और अतथ्यकथनों को डाल देने से महाभारत एक लाख श्लोकों में बन गई जो आज विद्यमान है।

अत एव महाभारत में आए शिक्षा सम्बन्धी वचनों को लेकर उन्हें एक आवश्यक और उपयोगी क्रम देकर अर्थ तथा क्वचित्-विवेचन के साथ रख स्वतन्त्र पुस्तक रूप में 'महाभारत की विशेष शिक्षाएँ' महाभारत शिक्षा-सुधा के नाम से पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जाता है और आशा है, इससे उपदेशक, व्याख्याता, कथावाचक, स्वाध्यायी, लेखक, विद्यार्थी एवं जन साधारण भी लाभ उठा सकेंगे।

स्वामी ब्रह्ममुनि

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

विषय-सूची

क्र.	विषय	पृष्ठ
	प्रथम पार्श्व	
	जीवन-संस्थान	
1.	जीवन और जीवन यात्रा, दीर्घ आयु प्राप्ति के साधन	9-13
	द्वितीय पार्श्व	
	आश्रम-संस्थान	
2.	ब्रह्मचर्याश्रम, ब्रह्मचर्य के साधन और लाभ गृहस्थाश्रम का संयम, सदाचार से लाभ, दुराचार से हानि, गृहस्थाश्रम, चार ऋण, अतिथि यज्ञ, वानप्रस्थाश्रम, वानप्रस्थ का आचार, व्यवहार, वेश, भोजन ययाति आदि राजाओं का वानप्रस्थी होना, संन्यासाश्रम-संन्यासी का वेश, लिंग, कर्तव्य, राजा जनक का संन्यास ग्रहण, स्त्री संन्यास तथा सुलभा संन्यासिनी	14-34
	तृतीय पार्श्व	
	वर्णव्यवस्था-संस्थान	
3.	चारों वर्ण और उनके सामान्य कर्म, कर्मानुसार वर्ण तथा वर्ण परिवर्तन, चाण्डाल आदि का ब्राह्मण होना, चार मूल गोत्र तथा वंश नाश के कारण	35-40

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

चतुर्थ पार्श्व
वेद-विद्यादि-संस्थान

4. वेद और वैदिक ऋषि, चारों वर्णों को वेदाध्ययन का अधिकार, विद्या प्रचार में राजनियम, दर्शन विद्या के अधिकारी, शिष्य परीक्षा, शिक्षा गृह निर्माण, विमान आदि कला 41-47

पञ्चम पार्श्व
सामाजिक-संस्थान

5. सभा के गुण-दोष, शूद्र का भी दान, तप आदि में अधिकार, महाभारत काल में अस्पृश्यता का अभाव, स्त्रियों के अधिकार, सुलभा आदि का उपदेश कार्य तथा, स्त्री सम्मान, मानव जीवन के कारण तथा मानव की, अनेक श्रेणियाँ 48-58

षष्ठ पार्श्व
राष्ट्रिय-संस्थान

6. राजा का धर्म तथा प्रजाजनों के प्रति कर्तव्य, राजधर्म निर्माता ऋषि, राजा के गुण और दोष, न्याय में साक्षि-योग्य जन, शासक बनाने का प्रयोजन, मंत्रिमण्डल, निर्वासन नियम, शत्रु से व्यवहार, शासक धर्म, अरक्षक राजा का हनन, राजनीति में छल, नारायण, ऐन्द्र, आग्नेय, तामस् आदि अस्त्र, वास योग्य राष्ट्र, सुरा निषेध, दण्डनीयजन, भारत, देश- 59-76

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

देशान्तर यात्रा, राष्ट्र की पशु-धन सम्पत्ति

सप्तम पार्श्व

शिष्टाचार-व्यवहार-संस्थान

7. वृद्ध, गुरु आदि तथा दैनिक शिष्टाचार, आन्तरिक जीवन के तीर्थ, भृत्य-व्यवहार, प्रसिद्ध प्रथाएँ 77-87

अष्टम पार्श्व

ईश्वर-जीव-प्रकृति-संस्थान

8. ईश्वर का स्वरूप तथा साक्षात्कार एवं सांख्य में ईश्वर-स्वीकार, कृष्ण अवतार नहीं किंतु ऋषि, कृष्ण का नारायण नाम, पुण्य, कर्मेच्छा, बार-बार जन्म, ईश्वर का ध्यान, ईश्वर दर्शन की विधि, वर याचना, स्वर्ग गमन, तथा सोलह सहस्त्र, स्त्रियों से सेवा कराना, जीव अमर और नित्य, पुर्नजन्म तथा मरण, वृक्षों में जीव, मोक्ष, ज्ञान से मोक्ष, मोक्ष का अधिकारी मुक्तावस्था, जल आदि में जीव-योनियाँ, शव-संस्कार, प्रकृति उपादान कारण, सृष्टि, का अनादित्व, संयोग-वियोगान्त संसार, अनित्य यौवन आदि षट् सम्पत्ति 88-102

नवम पार्श्व

धर्म-कर्म-संस्थान

धर्म का स्वरूप तथा आचरण, धर्म से विजय, 103-115

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

के साधन कर्म का माहात्म्य तथा फल

दशम पार्श्व
वैराग्य-संस्थान

10. धन की गति, उपभोग, संग्रह, विनाशयुक्त दुःखमय संसार, आत्मोत्थान के अभाव में जीव का द्वन्द्व सहन, सम्राट् का स्वल्प वस्तु विषय पर अधिकार मृत्यु से आवृत जगत्, महर्षि व्यास का शुक को उपदेश 116-128

एकादश पार्श्व
योग-संस्थान

11. योग के दोष, यज्ञकर्म से तुलना, योगी की मुक्ति, योग के लाभ, योगी के लक्षण, योग धारण के स्थान, परमात्मदर्शन, योग द्वारा प्राणत्याग 129-133

द्वादश पार्श्व
सद्व्रत-सत्यसंङ्कल्प-संस्थान

12. अहिंसा, अहिंसा से दीर्घायु, मांस निषेध वाणी का प्रभाव, अतिसंग्रह दोष, दान की विधि, श्राद्ध, अदान में आत्मनिरीक्षण, यज्ञ, उसके लाभ, यज्ञ में पशुहिंसा निषेध, तप का स्वरूप 134-152

त्रयोदश पार्श्व
सुख-दुःख-अभ्युदय-संस्थान

13. सच्चा सुख, लौकिक-सुख के आधार, सुख-दुःख के कारण, दुःख को पार करने वाले जन, मानस दुःख से बचने के उपाय अभ्युदय 153-158

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

एवं उसके प्रमुख साधन, त्रिवर्ग संग्रह, उद्धार और सुधार, कार्यानुसार फल

चतुर्दश पार्श्व

ऐतिहासिक विशिष्ट-वृत्त-संस्थान

14. पञ्चशिख संन्यासी के शिष्य, जनक का निर्ममत्व, युधिष्ठिर के अश्वमेध में याज्ञवल्क्य-ऋषि, व्यास मुनि के पाँच शिष्य, भीष्म पितामह का शरशय्या पर प्राणत्याग,श्रीकृष्ण का न्यायपक्ष, सुरापान निषेध, कृष्ण कर्ण का संवाद कृष्ण की पत्नी राधा नहीं, सत्यभामा कृष्ण के अवतारवाद और भक्ति वाद का कारण, सम्राट् भरत, धृतराष्ट्र का बल, युधिष्ठिर की धर्मपरायणता, भक्त-वत्सलता तथा न्याय द्रौपदी युधिष्ठिर की पत्नी, पाण्डवों के सभाभवन का दृश्य, वनप्रस्थान के पश्चात् राज्य का उत्तराधिकार, हिमालय यात्रा, स्वर्ग-त्रिविष्ट (तिब्बत) आरोहण 175-184

वैदिक पुस्तकालय
वैदिक पुस्तकालय
वैदिक पुस्तकालय
वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

वैदिक पुस्तकालय

प्रथम पार्श्व

जीवन-संस्थान

जीवन और जीवनयात्रा–

द्वन्द्वमेति च निर्द्वन्द्वस्तासु तास्विह योनिषु।
शीर्षरोगेऽक्षिरोगे च दन्तशूले गलग्रहे॥
जलोदरे तृषारोगे ज्वरगण्डे विषूचवेक।
श्वित्रकुष्ठे ऽग्निदग्धे च सिंध्मापस्मारयोरपि॥
यानि चान्यानि द्वन्द्वानि प्राकृतानि शरीरिषु।
उत्पद्यन्ते विचित्राणि तान्येषोऽभिमन्यते॥

(महा० शान्तिप० मोक्षधर्म० अध्याय 303। 5-7)

स्वरूप से यह पवित्र जीव 'कर्मानुसार' उन-उन योनियों में दुःखसंकट को प्राप्त होता है, यथा-शिरपीड़ा में, नेत्ररोग में, दन्तशूल में, कण्ठावरोध में, जलोदर में, तृषारोग में, ज्वररोग में, गण्डमाला रोग में, विषूचक-वमनविरेचनयुक्त ज्वर में, श्वेत तथा गलित कुष्ठ में, अग्निदाह में, अपस्मार में, रोग रूप दुःख संकटों से अतिरिक्त जो विचित्र प्राकृतिक उत्पात कृत दुःख संकट प्राणियों में उत्पन्न होते हैं उनको भी अनुभव करता है।

तथा–

स्रवन्ति न निवर्तन्ते स्रोतांसि सरितामिव।
आयुरादाय मर्त्यानां रात्र्यहानि पुनः पुनः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 332।5)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

जैसे नदियों के सोते बहते हुए लौटते नहीं हैं इसी भाँति दिन व रातें भी मनुष्य की आयु को बारंबार ले लेकर चले जाते हैं। वे लौटते नहीं हैं।

अपि च–

रथः शरीरं भूतानां सत्त्वमाहुस्तु सारथिम्।
इन्द्रियाणि हयानाहुः कर्मबुद्धिस्तु रश्मयः॥
तेषां हयानां यो वेगं धावतामनुधावति।
स तु संसारचक्रेऽस्मिंश्चक्रवत् परिवर्तते॥

(महा०, स्त्रीप० अ० 8।14, 15)

प्राणियों का शरीर रथ है, बुद्धि को सारथि कहते हैं, इन्द्रियों को घोड़ा बतलाते हैं और मन बागडोर है। जो मनुष्य घोड़ों के वेग के पीछे दौड़ता है वह तो इस संसार चक्र में चक्र की भाँति घूमा करता है, भटकता रहता है।

अतः–

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा।
चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च विद्यया॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन यश्चरेत् स सुखी भवेत्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 330। 28, 30)

जो मनुष्य उपस्थेन्द्रिय और उदर की, धैर्य (संयम) से रक्षा करे, हाथ, पाँव की नेत्र दृष्टि से, नेत्र और कान की मन से, मन और वाणी की विद्या से रक्षा करे तथा अध्यात्मविषय में रुचि रखता हुआ, अपने अन्तरात्मा में सन्तुष्ट रहता हुआ, शान्त, आत्मावलम्बी निःस्पृह एवं अमांसभोजी (शाकान्नभोजी) हो अपने ही सहाय से जीवनचर्या करता है वह सुखी होता है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

दीर्घ आयु की प्राप्ति का साधन बहिर्निवास–

मृत्योर्वा गृहमेतद्वै या ग्रामे वसतो रतिः।
देवानामेष वै गोष्ठो यदरण्यमिति श्रुतिः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 277।26)

ग्राम–नगर–निवास में रुचि या प्रवृत्ति रखना मृत्यु का घर है अर्थात् आयु को क्षीण करने का कारण है और जो अरण्य अर्थात् ग्राम–निवास से अलग, बाहर खुले में निवास करना देवों, अमरजनों दीर्घ आयु प्राप्त करने वालों का स्थान है, वह प्रसिद्धि है।

वृद्धों का मत आयुवृद्धि का कारण–

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते॥

(महा०, उद्योगप० प्रजा० अ० 38।1
अनुशासनप० अ० 104।66)

वृद्धों, मान्यजनों के आने पर छोटे के प्राण उखड़ जाते हैं, पुनः आदर के लिये खड़े होने और प्रणाम करने से वे यथास्थान हो जाते हैं–स्वस्थ हो जाते हैं।

पुनश्च–

मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत्।
आचार्यमथवाप्यन्यं तथायुर्विन्दते महत्॥
आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत्।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो वर्षाणां जीवते शतम्॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 104।44, 65)

माता–पिता को उठकर प्रणाम करे एवं आचार्य तथा अन्य वैसे विद्वान् को भी करे। ऐसा करने से बड़ी आयु प्राप्त होती है। गीले पैर करके भोजन करे, गीले पैरों सोए नहीं, गीले पैर करके भोजन खाने वाला सौ वर्ष जीवित रहता है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

ब्रह्मचर्य एवं सदाचार आदि सुगुण आयु बढ़ाते हैं–

ब्रह्मचर्येण जीवितम्।

(महा०, अनुशासनप० अ० 57।10)

ब्रह्मचर्य के सेवन से जीवन अर्थात् आयु प्राप्त होती है।

तथा–

आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम्।
आचारात् कीर्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च॥6॥
दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत्॥7॥
अपि पापशरीरस्य आचारो हन्त्यलक्षणम्॥8॥
अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः॥11॥
विशीला भिन्नमर्यादा नित्यं संकीर्णमैथुनाः॥
अल्पायुषो भवन्तीह नरा निरयगामिनः॥12॥
अक्रोधनः सत्यवादी भूतानामविहिंसकाः॥
अनसूयुराजिह्मश्च शतं वर्षाणि जीवति॥14॥
लोभमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः।
नित्योच्छिष्टः संकुसुको नेहायुर्विन्दते महत्॥15॥
नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं नास्तं यान्तं कदाचन।
नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम्॥17॥
ऋषयो नित्यसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुवन्॥18॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 104)

मनुष्य सदाचार से आयु प्राप्त करता है, सदाचार से शोभा प्राप्त करता है, सदाचार से इस जन्म में और मरकर भी कीर्ति प्राप्त करता है। दुराचारी मनुष्य यहाँ अधिक आयु को नहीं प्राप्त करता है, किन्तु सदाचार पापी जन के दोषों को भी नष्ट करता है। धर्म के ज्ञान से रहित दुराचारी जन आयु से हीन हो जाते हैं। कुटिल स्वभाव वाले, मर्यादा भंग करने वाले, नित्य मैथुन में लिप्त हुए जन दुःख में पड़ने वाले और

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

थोड़ी आयु वाले होते हैं। क्रोधरहित, सत्यवादी, प्राणियों की हिंसा न करने वाला, अनिन्दक, कुटिलतारहित जन सौ वर्ष जीवित रहता है। जो मनुष्य व्यर्थ ढेले तोड़ने वाला, तिनके तोड़ने वाला, नख खाने वाला, सदा जूठा खाने वाला, चंचल मन वाला—चलचित्त अधिक नहीं जीवित रहता। उदय होते हुए, अस्त होते हुए, ग्रहण लगे हुए, जल में प्रतिबिम्बित हुए तथा आकाश के मध्य में आए हुए सूर्य को न देखो। ऋषियों ने दीर्घ सन्ध्या, अधिक ध्यान, योगाभ्यास द्वारा दीर्घ आयु को प्राप्त किया है।

अहिंसा से दीर्घ आयु—

अहिंसया च दीर्घायुरिति प्राहुर्मनीषिणः।

(महा०, अनुशासनप० अ० 167।19)

अहिंसा से दीर्घ आयु होती है ऐसा ऋषि मुनि कहते हैं।

मांस न खाने से आयु प्राप्ति—

आमिषप्रतिसंहारात् प्रजा ह्यायुष्मती भवेत्।

(महा० अनुशासनप० अ० 57।17)

लोग मांस परित्याग से आयुष्मान् होते हैं।

आयु की वृद्धि और ह्रास की दिनचर्या—

अनायुष्यं दिवास्वप्नं तथाभ्युदतिशायिता।
प्रगे निशामाशु तथा नैवोच्छिष्टाः स्वपन्ति वै॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 104।139)

दिन में सोना और सूर्योदय पर सोना आयु को कम करता है। सायं शीघ्र तथा जूठे मुख-हाथ भी नहीं सोना चाहिए उससे भी आयु कम होती है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

द्वितीय पार्श्व

आश्रम-संस्थान

चार आश्रम–

गृहेषु वनवासेषु गुरुवासेषु भिक्षुषु।।

(महा०, आश्वमेधप० अ० 33।5)

यहाँ गृहवासी, वनवासी, गुरुवासी (ब्रह्मचारी), भिक्षु (संन्यासी) का कथन चार आश्रमों का द्योतक है।

तथा–

गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
चत्वारः आश्रमाः प्रोक्ताः सर्वे गार्हस्थ्यमूलकाः।।

(महा०, आश्वमेधप० अ० 45।13)

गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी चार आश्रम कहे हैं ये सब गृहस्थ आश्रम पर निर्भर हैं।

ब्रह्मचर्य–

विशुद्ध ब्रह्मचर्य पालन का साधन–

निष्कल्मषं ब्रह्मचर्यमिच्छता चरितुं सदा।
निद्रा सर्वात्मना त्याज्या स्वप्नदोषानवेक्षता।।
स्वप्ने हि रजसा देही तमसा चाभिभूयते।
देहान्तरमिवापन्नश्चरत्यपगतस्पृहः।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 216।1-2)

निष्पाप ब्रह्मचर्य पालन के इच्छुक जन को सदा स्वप्न के दोषों को देखते हुए सर्वथा निद्रा छोड़ देनी चाहिये। कारण

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

कि स्वप्न में जीव रजोगुण और तमोगुण से वशीभूत हो जाता है, इच्छारहित होता हुआ भी अन्य देह को प्राप्त हुआ जैसा विचरता है।

ब्रह्मचर्य से आयु प्राप्ति–

ब्रह्मचर्येण जीवितम्

(महा०, अनुशासनप०, अ० 57।10)

ब्रह्मचर्य से आयु प्राप्त होती है।

ब्रह्मचर्य से मृत्यु को स्वाधीन करना–

पितृभक्तोऽसि राजर्षे मार्कण्डेय इवापरः।
तेन मृत्युस्तव वशे स्थितो भृत्य इवानतः॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 167।44)

हे भीष्मपितामह राजर्षि! तू मार्कण्डेय के समान पितृभक्त है। तुमने पिता के निमित्त आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत पालन किया है। अतः मृत्यु तुम्हारे वश में नौकर के समान नम्र हुई है।

ब्रह्मचर्य पालन से मृत्यु को स्वेच्छानुसार पाना–

स मां त्वमनुजानीहि कृष्ण मोक्ष्ये कलेवरम्॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 167।45)

अच्छा हे कृष्ण! अब मुझे अनुमति दो, मैं शरीर छोड़ूँगा।

ब्रह्मचर्य के अन्य गुण–

ब्रह्मचर्यस्य च गुणं श्रृणु त्वं वसुधाधिप!।
आजन्ममरणाद् यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह।
न तस्य किञ्चिदप्राप्यमिति विद्धि नराधिप!॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 75। 34, 35)

हे पृथिवीपते राजन्! तुम ब्रह्मचर्य के गुण सुनो, यहाँ जो जन्म से मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे उसके लिए कुछ भी अप्राप्य नहीं रहता ऐसा तुम जानो।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

संयम से परमात्मदर्शन–

यदा संहरते कामान् कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
तदाऽऽत्मज्योतिरात्माऽयमात्मन्येव प्रपश्यति॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० 74।54)

आत्मा जब कामभावों, भोगेच्छाओं को प्रत्याहृत, (संहृत, अन्तर्लीन) करता है जैसे कछुआ अपने अङ्गों को अन्दर छिपाता है तब अपने अन्तरात्मा में ही परमात्म ज्योति को देखता है।

दमन (इन्द्रियदमन) रूप संयम के लाभ–

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
संनियम्य तु तान्येव सिद्धिमाप्नोति मानवः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 323।8)

मनुष्य इन्द्रियों के प्रसङ्ग से निःसन्देह दोष को प्राप्त हो जाता है परन्तु उन्हीं इन्द्रियों को नियन्त्रित करके, दमन करके सिद्धि को प्राप्त करता है।

तथा–

दमेन ही समायुक्तो महान्तं धर्ममश्नुते।
सुखं दान्तः प्रस्वपिति सुखं च प्रतिबुध्यते॥
अदान्तः पुरुषः क्लेशमभीक्ष्णं प्रतिपद्यते।
अनर्थांश्च बहूनन्यान् प्रसृजत्यात्मदोषजान्॥
निष्क्रम्य वनमास्थाय ज्ञानयुक्तो जितेन्द्रियः।
कालाकांक्षी चरत्येव ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

(महा०, शान्तिप० आपद्धर्म० अ० 160।11, 12, 25)

दमन अर्थात् इन्द्रिय संयम से युक्त मनुष्य महान् गुण को प्राप्त होता है, दमनशील, संयमी जन सुख से सोता है और सुख से जागता है। इन्द्रिय–लोलुप–व्यसनी मनुष्य पुनः पुनः क्लेशों को भोगता है तथा अपने दोषों से हुए बहुत से अन्य अनर्थों की सृष्टि करता है, किन्तु जितेन्द्रिय जन घर से

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

निकल कर वन में जा, ज्ञान युक्त हो, काल से भय न करता हुआ विचरता ही है, ऐसा वह ब्रह्मभाव अर्थात् ब्रह्मानन्द के लिए समर्थ होता है।

गृहस्थ का संयम–

परदाररतिर्यश्च यश्च वन्ध्यामुपासते।
ब्रह्मस्वं हरते यश्च समदोषा भवन्ति ते।।
तस्मात् परस्य वै दारांस्त्यजेद् वन्ध्यां च योषितम्।
ब्रह्मस्वं हि न हर्तव्यमात्मनो हितमिच्छता।।

(महा०, अनुशासनप० अ० 131। 2, 4)

जो मनुष्य परस्त्रीगमन और वन्ध्यागमन करता है तथा जो ब्राह्मण का धन हरता है, ये तीनों समान पाप हैं। अतः अपने हित के इच्छुक जन को परस्त्रीगमन और वन्ध्यास्त्री गमन छोड़ना चाहिए एवं ब्राह्मण का धन भी न हरना चाहिए।

सदाचार से लाभ और दुराचार से हानि–

आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम्।
आचारात् कीर्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च।।
दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत्।
अपि वा पापशीलस्य आचारो हन्त्यरक्षणम्।।
अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः।।
विशीला भिन्नमर्यादा नित्यं संकीर्णमैथुनाः।
अल्पायुषो भवन्तीह नरा निरयगामिनः।।

(महा०, अनुशासनप० अ० 104। 6,7, 8,11)

मनुष्य सदाचार से आयु को प्राप्त करता है और सदाचार से शोभा, कान्ति को प्राप्त होता है, सदाचार जीवनकाल में और मर कर भी कीर्ति को प्राप्त करता है। सदाचार दोषी मनुष्य के भी दोष को नष्ट कर देता है। दुराचारी मनुष्य आयु

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

को पूरी नहीं भोग पाता है।

कामवृद्धि अहितकर–

कामं कामयमानस्य यदा कामः समृध्यते।
अथैनमपरः कामस्तृष्णा विध्यति बाणवत्।।

(महा०, अनुशासनप० अ० 93।47)

कामभाव के चाहने वाले का जब काम भाव बढ़ जाता है तो पुनः अन्य कामभाव तृष्णा रूप उसे बाण की भाँति बींध देता है।

गृहस्थ–

गृहस्थ सब आश्रमों का मूल है–

चत्वारः आश्रमाः प्रोक्ताः सर्वे गार्हस्थ्यमूलकाः।

(महा०, आश्वेमेधिकप० अ० 45।13)

चार आश्रम कहे गए हैं। वे आश्रम सब गृहस्थमूलक हैं, गृहस्थ आश्रम उनका मूल आश्रम है, यहाँ से ही सबकी उपज है।

गृहस्थ सब आश्रमों का आश्रय है–

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
एवमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।

(महा०, शान्तिप० मोक्षध० अ० 295।39)

जैसे नदियाँ और नद (बड़ी नदी) सब समुद्र में आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार समस्त आश्रमी जन गृहस्थ आश्रम में आश्रय लेते हैं।

गृहस्थ के लिये परस्त्रीगमन और वन्ध्यागमन दोष है–

परदाररतिर्यश्च यश्च वन्ध्यामुपासते।
ब्रह्मस्वं हरते यश्च समदोषा भवन्ति ते।।
तस्मात्परस्य वै दारांस्त्यजेद् वन्ध्यां च योषितम्।

(महा०, अनुशासनप० अ० 129। 2,4)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

परस्त्रीगमन करने वाला और जो वन्ध्यागमन करने वाला है तथा जो ब्राह्मण का धन हरता है ये समान दोष वाले हैं। अतः गृहस्थ को परस्त्रीगमन तथा अपनी स्त्री वन्ध्या हो तो उससे भी समागम न करना चाहिए।

गृहस्थ अपनी स्त्री से भी अनृतु गमन न करे–

भार्यां गच्छन् ब्रह्मचारी ऋतौ भवति चैव हि।।

(महा०, अनुशासन प० अ० 93।11)

ऋतुकाल में स्त्री समागम करते हुए भी गृहस्थ ब्रह्मचारी कहलाता है अर्थात् अपनी स्त्री से भी अनृतु गमन करना व्यभिचार है।

सन्ततिमोह तथा गृहस्थ सुख की इच्छा पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक होता है।

यथा महाभारत के अनुशासन पर्व अध्याय 12 में एक कथा प्रदर्शित की है–

भङ्गास्वन राजर्षि अपुत्र थे, उन्होंने पुत्र प्राप्ति के लिये यज्ञ किया, अग्नि देवता की स्तुति की। सौ पुत्र उत्पन्न हो गए परन्तु इन्द्र देवता अप्रसन्न हुए कि मेरी स्तुति क्यों नहीं की (राजा के समस्त कार्य इन्द्रदेवता की स्तुति से होने चाहिए)? उस स्थिति में राजा पर इन्द्र अप्रसन्न हुए और कुछ उसका अनिष्ट करने का निश्चय किया।

एक बार राजा घोड़े पर चढ़ मृगया के लिये जंगल में चल दिए। जंगल में सरोवर मिला। उन्होंने उसमें स्नान किया तो इन्द्र ने सरोवर में ही स्नान करते हुए उन राजा को स्त्री बना दिया। राजा ने अपने को स्त्री पाया तो घोड़े पर चढ़कर नगर में अपने सो पुत्रों को राज्य समर्पित कर वन में जा एक तपस्वी को पति बना, तापसी बन गए और तपस्वी से अन्य सौ पुत्र उत्पन्न किए। कुछ बड़े होने पर उन्हें वह तापसी

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

अपने प्रथम सौ पुत्रों के पास ले गई और प्रथम सौ पुत्रों से कहा—"तुम मेरे पुरुष रूप से पुत्र हो। ये मेरे स्त्री रूप से हुए पुत्र हैं। ये तुम्हारे भाई हैं, तुम मिलकर राज्य करो।" पुनः दो सौ पुत्र राज्य करने लगे। इन्द्र ने सोचा, 'मैंने तो इसके अनिष्ट के लिये इसे स्त्री बनाया था किन्तु इसे तो द्विगुण इष्ट की सिद्धि हो गई। सौ पुत्रों के दो सौ पुत्र हो गए और सब मिलकर राज्य करने लगे।' पुनः उन पुत्रों में फूट डालने का निश्चय कर ब्राह्मण वेश में इन्द्र ने आकर प्रथम सौ पुत्रों को कहा—"एक पिता के भी पुत्रों में राज्य में भ्रातृत्व (भाईचारा) नहीं होता। जैसे कश्यप पुत्र सुर और असुर थे, परन्तु राज्य में भ्रातृत्व नहीं हुआ और तुम भङ्गास्वन राजा के और ये दूसरे सौ तापस-तापसी के पुत्र हैं तुम्हारा पैतृक राज्य तापस-पुत्र भोगें, यह ठीक नहीं।"

पुनः दोनों पुत्र वर्गों में युद्ध हो गया और सब मर गए। तापसी रोने लगी। इन्द्र ब्राह्मण-वेष धारण कर उनके पास पहुँचे और कहा—"क्यों मुझे यज्ञ में नहीं बुलाया, उसका फल चखो।" तापसी इन्द्र के चरणों में गिर पड़ी और कहा—"क्षमा करें।"

इन्द्र को दया आई और प्रसन्न होकर बोले, "तुम्हारे दो सौ पुत्रों में से सौ पुत्र जीवित कर दूँगा। बोलो कौन से सौ जीवित करूँ, पुरुष रूप से उत्पन्न हुए या स्त्री रूप से उत्पन्न हुए।" तब तापसी ने कहा कि स्त्री रूप से उत्पन्न हुए।

स्त्रीभूतस्य हि ये पुत्रास्ते मे जीवन्तु वासव!44॥

'हे इन्द्र! स्त्री रूप से उत्पन्न हुए मेरे पुत्र जीवित हों।'

इन्द्र ने पूछा "तुमने क्यों ऐसा वर माँगा?" तापसी ने कहा। "पुरुष की अपेक्षा स्त्री में पुत्रों के प्रति अधिक स्नेह होता है, अतः तुलना में मुझे स्त्री रूप के पुत्रों में अधिक

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

स्नेह है।"

पुनः इस सत्यता से प्रसन्न हो इन्द्र ने दूसरा वर माँगने को कहा "अब तुम पुरुष रूप में होना चाहती हो या स्त्री रूप में रहना चाहती हो, जैसा चाहो वैसा कर दूँ।" तापसी ने कहा–"स्त्री रूप में ही रहना चाहती हूँ–

स्त्रीत्वमेव वृणे शक्र! पुंस्त्वं नेच्छामि वासव!॥50॥

हे इन्द्र! मैं स्त्री रूप ही चाहती हूँ, पुरुष रूप नहीं चाहती।"

नियोग–

वीणासु वाद्यमानासु गन्धर्वैः शक्रनन्दन!।
अपि चान्याश्च शत्रुघ्न तव पित्रा विसर्जिताः।
ततोऽहं समनुज्ञाता तेन पित्रा च हेऽनघ॥
सुपुत्राऽद्य पृथा तात! त्वया पुत्रेण सत्तम।
ऋषयोऽपि हि धैर्येण जिता वै ते महाभुजा!॥

(महा०, वनप० इन्द्रलोकाभि० अ० 46)

उर्वशी अर्जुन से कहती है–हे इन्द्र के पुत्र! गन्धर्वों द्वारा वीणा वादन-काल में मुझे और अन्य अप्सराओं को भेजा, तब मैं उस तुम्हारे पिता इन्द्र की प्रेरित हो आज्ञा पाकर आई, परन्तु तुमने तो अपने धैर्य से ऋषि भी जीत लिये, ऐसे तुम पुत्र से पृथा कुन्ति तेरी माता सुपुत्रा सिद्ध हुई।

यहाँ देवों के राजा इन्द्र और कुन्ति के विनियोग से अर्जुन का होना स्पष्ट है।

तथा–

भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णः शकुनिः सह राजभिः।
संग्रामस्थस्य ते पुत्र! कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

(महा०, वनप० निवातकवच युद्ध० अ० 174।5)

इन्द्र अर्जुन को कहते हैं–हे पुत्र! भीष्मपितामह, द्रोण,

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

कृपाचार्य, कर्ण, शकुनि आदि राजाओं के सहित अन्य संग्राम में स्थित तुम्हारी सोलहवीं कला को भी प्राप्त नहीं कर सकते।

यहाँ इन्द्र ने स्वयं अर्जुन को पुत्र कहा है।

चार ऋण चुकाना नित्य कर्म–

ऋणैश्चतुर्भिः संयुक्ता जायन्ते मानवा भुवि।
पितृदेवर्षिमनुजैर्देयं तेभ्यश्च धर्मतः।।

(महा०, आदिप० सम्भव० अ० 12।18)

मनुष्य चार ऋणों से युक्त होते हैं। वे चार ऋण हैं–पितृऋण, देवऋण, ऋषिऋण और मनुष्यऋण। पितृऋण–माता–पिता आदि पारिवारिकजन के पालन का, देवऋण–वायु आदि के सेवन का जो शोधन द्वारा पूरा किया जाता है, ऋषिऋण–विद्वानों से अध्ययन, शिक्षा प्राप्ति तथा पुरातन ऋषि मुनियों के ग्रन्थों से शिक्षा प्राप्ति का, मनुष्य ऋण–भिन्न-भिन्न मनुष्य के प्रयत्नों से प्राप्त वस्तुओं के सेवन का होता है।

अतिथि–यज्ञ या अतिथि सेवा–

अतिथिः पूजितो यद्धि ध्यायते मनसा शुभम्।
न तत्क्रतुशतेनापि तुल्यमाहुर्मनीषिणः।।
पात्रं त्वतिथिमासाद्य शीलाढ्यं यो न पूजयेत्।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति।।

(महा०, अनुशासनप० अ० 92, 93)

सत्कार पाया हुआ अतिथि जो मन से यजमान या गृहस्थ का शुभ चिन्तन करता है उसे सैकड़ों यज्ञों के तुल्य ऋषि मुनिजन कहते हैं। शीलगुण सम्पन्न पात्र अतिथि को जो नहीं पूजता है उसको अतिथि अपना दुष्कृत देकर और उसका पुण्य लेकर चला जाता है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

तथा—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥

(महा०, शान्तिप० अ० 121।12)

जिसके घर से अतिथि निराश होकर लौटता है वह उसके लिये दुष्कृत देकर और पुण्य लेकर चला जाता है।

अतिथि-सेवा न करना पाप है—

स्त्रीघ्नैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्रह्मघ्नैगुरुतल्पगैः।
तुल्यदोषो भवत्येभिर्यस्यातिथिरनर्थितः।

(महा०, अनुशासनप० अ० 126।28)

स्त्रीघातक, गोघातक, कृतघ्न, ब्रह्मघातक और गुरुपत्नीगामी के तुल्य दोषी होता है जिसने अतिथि का सत्कार न किया हो।

अतिथि-सेवा पर कथा महाभारत आश्वमेधिक पर्व में आई है—

युधिष्ठिर के यज्ञ में ब्राह्मणों, अतिथियों का महान् स्वागत धन आदि से किया गया। युधिष्ठिर उस अतिथि-सेवा के महत्त्व को पूछ और कीर्ति को सुनकर प्रसन्न हो रहे थे कि एक नकुल (नेवला) आधा सुनहरी शरीर लिये हुए युधिष्ठिर से बोला, "युधिष्ठिर! तुम्हारे यज्ञ एवं अतिथि-सत्कार तो कुछ नहीं है। अतिथि सत्कार तो कापोति उञ्छवृत्ति ब्राह्मण का था। वृद्ध अतिथि के प्रक्षालित हस्त (धोए हाथ) के जल ने मेरे आधे अङ्ग पर गिरते ही उसे तुरन्त सुनहरी बना दिया, परन्तु तुम्हारे यज्ञ में आए अतिथियों के धोए हाथों के जल में मैं समूचा ही भीगता व लोटता रहा पर एक भी अन्य बाल सुनहरी न बना, जैसा और जितना कापोति ब्राह्मण के अतिथि-सत्कार प्रसङ्ग में सुनहरी बन गया था, उतना ही रहा। मैं यह सुनकर आया था कि यहाँ

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

तुम्हारे यज्ञ में बड़ा भारी अतिथि सत्कार होगा और यहाँ अतिथियों की तृप्ति के प्रक्षालित हस्तजल से शेष आधा भी सुनहरी बन जाऊँगा, परन्तु तुम्हारे यज्ञ, तुम्हारे अतिथि-सत्कार से वह ऊँचा था। वह कैसा था सुना देता हूँ। एक कापोति ब्राह्मण ने यथा नाम तथा गुण, कपोत-कबूतर की भाँति उञ्छवृत्ति अर्थात् खेत के कट जाने पर अन्न के कृषक द्वारा उठा लिये जाने पर, कण-कण एकत्र कर उस पर निर्वाह करने की वृत्ति बना रखी थी। उसके परिवार में वह स्वयं, उसकी पत्नी, पुत्र और पुत्रवधू ये चार व्यक्ति थे।

एक बार दुर्भिक्ष पड़ा, छठे दिन कहीं एक सेर यव मिला, उसका सत्तू बनाया। चारों का एक-एक पाव विभाग हुआ और खाने को बैठने लगे तो तुरन्त एक अतिथि आ गया और कहने लगा, "मैं बारह दिन का भूखा हूँ, मुझे अन्न मिले।"

ब्राह्मण ने उसे बिठाया और अपना भाग एक पाव सत्तू का उस अतिथि के आगे रखने लगा और कहने लगा- "महाराज! आप मुझसे अधिक इस अन्न के अधिकारी हैं। मैं तो छः ही दिन का भूखा हूँ पर आप बारह दिन के भूखे हैं। आप बारह दिन तक बिना अन्न के जीवित रहे हैं तो मैं भी इस बीच में बिना अन्न न मर सकूँगा और बारह दिन तक पुनः अन्न प्राप्त कर ही लूँगा।"

यह देख उस की पत्नी बोली-"मैं अपना भाग अतिथि को दूँगी क्योंकि स्त्री के खाते हुए पुरुष भूखा रहे यह मर्यादा नहीं।"

"पुरुष ने कहा-"पत्नी का आहार-भार पति पर निर्भर है, तुम्हें भूखे रखकर मेरा खाना धर्म नहीं।"

उधर पुत्र ने यह देख दोनों को कहा-"मैं युवा हूँ बिना अन्न के शीघ्र नहीं मर सकता, मेरा भाग दे दो।"

पुत्रवधू ने भी कहा-"मैं आप में से किसी को भी भूखे

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

नहीं देख सकती।" किन्तु पिता ने कहा–"तुम दोनों को भूखा रहने में इस यौवन काल में क्षति होगी अतः मैं तुम्हारी क्षति को नहीं सह सकता।"

इतना कहकर अपना भाग अतिथि के अर्पण कर दिया। अतिथि ने उसे खाकर कहा–"अभी मैं भूखा हूँ।" पुनः कापोति वृद्ध की वृद्धा स्त्री ने अपना भाग अतिथि को दे दिया। वह उसे भी खाकर कह उठा–"अभी भूखा हूँ।" पश्चात् पुत्र ने अपना भाग अतिथि के समर्पण कर दिया। वह उसे भी खाकर बोल उठा–"अभी और भूखा हूँ।" फिर पुत्रवधू ने भी अपना भाग अतिथि के आगे सौंप दिया। उसे खाकर अतिथि ने कहा–"हाँ, अब तृप्त हो गया, आप सब का शुभ हो।"

पुनः अतिथि के हाथ धुलाए गए, अतिथि के हाथों के धोवन का जल मेरे चलते हुए के आधे अङ्ग पर गिर पड़ा तो मेरा आधा अङ्ग सुनहरा बन गया। यहाँ तो आप के सत्कृत अतिथियों के हाथों के धोवन जल में डुबकियाँ भी खाता रहा पर शेष आधा अङ्ग मेरा सुनहरी न बना। अतः आपका अतिथि-सत्कार कापोति ब्राह्मण के अतिथि-सत्कार के सम्मुख कुछ नहीं है।"

(महा०, आश्वमेधिकप० अध्याय 90)

वानप्रस्थ आश्रम

वानप्रस्थ का आचरण–

दान्तो मैत्रः क्षमायुक्तः केशान् श्मश्रु च धारयन्।
जुह्वन् स्वाध्यायशीलश्च सत्य-धर्म-परायणः॥
शुचिदेहः सदादक्षो वननित्यः समाहितः।
एवं युक्तो जयेत् स्वर्गं वानप्रस्थो जितेन्द्रियः॥

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 46)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

दमनशील, सबसे मित्र भाव रखने वाला, क्षमाशील, शिर के केशों–जटा और दाढ़ी–मूँछें रखे हुए, अग्नि–होत्र करता हुआ, स्वाध्यायशील, सत्यधर्मपरायण, पवित्र देह वाला, सदा चतुर, वन में नित्य रहने वाला, नगर में न जाने वाला, समाहित, जितेन्द्रिय, इस प्रकार दृढ़ नियम वाला सुख को जीतता है–सुख को प्राप्त होता है।

वानप्रस्थ का वेश और व्यवहार–

चीरवल्कलसंवीतैर्मृगचर्मनिवासिभिः।
कार्या यात्रा यथाकालं यथाधर्मं यथाविधि॥
विमुक्ता दारसंयोगैर्विमुक्ताः सर्वं सङ्गरैः।
विमुक्ताः सर्वपापैश्च चरन्ति मुनयो वने॥
क्षान्तो दान्तो जितक्रोधो धर्मभूतो विहिंसकः।
धर्मे रतमना नित्यं नरो धर्मेण युज्यते॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 142। 12, 16, 32)

बिना सिले वस्त्र और वृक्ष–छाल पहनने वाले, सिंह आदि जङ्गली पशु की खाल को ओढ़ने, बिछाने वाले, वानप्रस्थ जनों को समयानुसार धर्म और विधि के साथ यात्रा करनी चाहिये। स्त्री सम्बन्धों से रहित सब पापों से अलग वानप्रस्थ वन में रहते हैं। वानप्रस्थ क्षमाशील, दमनशील, क्रोध पर विजय पाए हुए धर्मरूप होकर हिंसा न करने वाला धर्म में नित्य मन को रत रखने वाला धर्म से युक्त होता है।

वानप्रस्थ का भोजन–

फलमूलानिलभुजां मुनीनां वसतां वने।
वानप्रस्थं द्विजातीनां त्रयाणामुपदिश्यते॥

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 14। 42, 43)

तीनों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को वानप्रस्थ लेने का उपदेश है, वे वानप्रस्थ जन वन में फल, मूल और वन के

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

वायु, जल आदि का ही सेवन करें।

राजाओं का वानप्रस्थ लेना–

राजर्षीणां हि सर्वेषामन्ते वनमाश्रमः॥

(महा०, आश्रमवासिप० अ० 4।5)

राज्य कार्य से निवृत्त होकर अन्त में राजा का आश्रम वन है। ययाति राजा ने वानप्रस्थ ग्रहण किया–

पुरुं राज्येऽभिषिच्याथ सदारः प्राविशद् वनम्।

(महा०, शान्ति पर्व० राजधर्म० अ० 29।98)

पुरु को राज्य में अभिषिक्त कर ययाति राजा स्त्री सहित वन में चले गए।

शतयूप राजा आदि ने वानप्रस्थ धारण किया–

आससादाथ राजर्षिं शतयूपं मनीषिणम्।
स हि राजा महानासीत् केकयेषु परन्तप॥
स्वपुत्रं मनुजैश्वर्ये निवेश्य वनमाविशत्।

(महा०, आश्रमवासि प० अ० 19। 90 10)

शतयूप मनीषी राजर्षि के पास गया, जो कि शतयूप राजा के केकय देश में महान् राजा था। वह अपने पुत्र को नरेश पद पर बिठाकर वन में चला गया था एवं भगदत्त के पिता शैलालय, पृषध्र, मान्धाता का पुत्र पुरुकुत्स, शशलोमा भी वानप्रस्थ बने।

धृतराष्ट्र की वनस्थ होने की इच्छा–

अनुज्ञातस्त्वया वीर संश्रयेयं वनान्यहम्।
चीरवल्कलभृद् राजन्! गान्धार्या सहितोऽनया॥
तवाशिषः युयुञ्जानो भविष्यामि वनेचरः।
उचितो नः कुले तात सर्वेषां भरतर्षभ॥
पुत्रेष्वैश्वर्यमाधाय वयसोऽन्ते वनं नृप॥

(महा०, आश्रमवासिप० अ० 3। 36, 38)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

हे वीर युधिष्ठिर! मुझे अनुमति दे, मैं बिना सिले वस्त्र और वृक्षछाल शरीर पर धारण कर गान्धारी सहित वन में जाऊँ, तुम्हारे लिए आशीर्वाद करता हुआ वनवासी होऊँगा। हे प्रिय! हमारे कुल में सबका यह उचित कर्तव्य है कि आयु के अन्तिम भाग में पुत्रों को राज्य सौंप कर वन में चले जाना।

धृतराष्ट्र ने वानप्रस्थ धारण किया–

अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य वल्कलाजिनसंवृतः।
वधूजनवृतो राजा निर्ययौ भवनात् ततः॥

(महा०, आश्रमवासिकप० अ० 15। 3)

धृतराष्ट्र राजा अग्निहोत्र को आगे कर वल्कल, वृक्ष छाल, व्याघ्र चर्म को धारणकर बन्धुओं से घिरा हुआ राजभवन से निकल पड़ा।

कुन्ती का वानप्रस्थ धारण करना–

श्वश्रूश्वशुरयोः पादान् शुश्रूषन्ती वने।
गान्धारी सहिता वत्स्ये तापसी मलपङ्किनी।

(महा०, आश्रमवासिकप० अ० 18।11)

वन में सास–श्वसुर के चरणों की सेवा करती हुई गान्धारी के साथ तापसी शोभा भूषारहित मैं भी बसूँगी।

धृतराष्ट्र सबको साथ लेकर वन चले गये–

ययौ राजा महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो वनं तदा।

(महा०, आश्रमवासिकप० अ० 18।12)

धृतराष्ट्र सबको साथ लेकर वन चले गये।

धृतराष्ट्र का वन में वानप्रस्थ जीवन–

विदुरः सञ्जयश्चैव राज्ञः शय्यां कुशै स्ततः।
चक्रतुः कुरुवीरस्य गान्धार्याश्चाविदूरतः॥

(महा०, आश्रमवासिकप० अ० 18। 19, 20)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

विदुर और सञ्जय ने धृतराष्ट्र राजा का और गान्धारी का बिस्तर कुशाओं से बनाया।

युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डवों ने वानप्रस्थ धारण किया–

ततः स राजा कौरव्यो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
उत्सृज्याभरणान्यङ्गाज्जग्रहे वल्कलान्युत।।
भीमार्जुनयमाश्चैव द्रौपदी च यशस्विनी।
तथैव जगृहुः सर्वे वल्कलानि नराधिप!।।
विधिवत् कारयित्वेष्टिं नैष्ठिकीं भरतर्षभ!।

(महा०, महाप्रस्थानिकप० अ० 1। 20, 21)

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने अङ्गों से भूषण आदि राज्यवेश उतार कर वल्कल धारण किये एवं भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा द्रौपदी ने भी वल्कल धारण किये और विधिवत् इष्टि करके वनप्रस्थान किया।

संन्यास आश्रम

चतुर्थाश्रम-रूप संन्यास का विधान–

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः।

(महा०, शान्तिप० राजधर्म० 15।18)

ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी और भिक्षुक ये चार आश्रमी हैं।

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० 334।9)

यहाँ भी चारों आश्रमी ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक का विधान है।

गृहेषु वनवासेषु गुरुवासेषु भिक्षुषु।

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 33।5)

गुरुवासी–ब्रह्मचारी, गृहवासी–गृहस्थ, वनवासी–भिक्षुक।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
चत्वारः आश्रमाः प्रोक्ताः सर्वे गार्हस्थ्यमूलकाः॥

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 45।13)

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक चार आश्रम कहे हैं जो सब गृहस्थ-मूलक हैं।

दशान्यानि सहस्राणि येषामन्नं सुसंस्कृतम्।
ह्रियते रुक्मपात्रीभिर्यतीनामूर्ध्वरेतसाम्॥

(महा०, वनप० द्रौपदीसत्यभामा० अ० 333।44)

पका हुआ भोजन यहाँ सोने के पात्रों में यतियों-संन्यासियों को दिए जाने के वर्णन से यति-भिक्षुक-संन्यासी का वर्णन है।

संन्यास में वेष आदि लिङ्ग-

ततः काषायवसना दमयन्ती महाराज बाहुकं वाक्यमब्रीत्॥

(महा०, वनप० नलोपा० अ० 44।9)

दमयन्ती ने साधु वेष धारण किया तो काषायवस्त्र पहने थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि साधु स्थिति में वस्त्र काषायरंग के भगवे व गेरुए वस्त्र होते हैं।

शिरसो मुण्डनाद्वापि न स्थानं कुटिकासनात्।

(महा०, वनप० मार्कण्डेय० अ० 200।5)

संन्यासी शिर का मुण्डन करावे, कुटीनिवास न रखकर रहे।

कमण्डलुश्चाप्यनु तं महर्षिगणसेवितः।
तस्य दक्षिणतो भाति दण्डो गच्छन् श्रियावृतः॥

(महा०, वनप० मार्कण्डेय० अ० 231।42)

संन्यासी के लिए महर्षि-गण से सेवित कमण्डलु पात्र और जाते हुए दक्षिण हाथ में दण्ड सुशोभित होता है।

कृत्वाऽग्निहोत्रं स्वशरीरसंस्थं शारीरमग्निं स्वमुखे जुहोति। विप्रस्तु भैक्ष्योपगतैर्हविभिश्चिताग्नीनां स व्रजते हि शोकम्॥ (महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 192।5)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

अपने शरीरसंस्थ अग्निहोत्र शरीर की अग्नि को करके अपने मुख में होमता है, गृहस्थों के भिक्षान्न भोजनों की हवियों से जीवन निर्वाह करता हुआ संन्यासी संसार में विचरता है।

संन्यासी के कर्तव्य–

परिव्राड् योगयुक्तश्च।

(महा०, उद्योगप०, प्रजा० प० अ० 33।61)

संन्यासी योगयुक्त होना चाहिए।

अनग्निरनिकेतश्च ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्।
अश्वस्तनविधातास्यान्मुनिर्भावसमाहितः।।6।।
लघ्वाशी नियताहारः सकृदन्ननिषेविता।
कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता।।7।।
अहेरिव गणाद्भीतः सौहित्यान्नरकादिव।
कुणपादिव च स्त्रीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः।।13।।
न क्रुध्येन्न प्रहृष्येत मानितोऽमानितश्च यः।
सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः।।14।।
नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्।
कालमेव प्रतीक्षेत निदेशं भृतको यथा।।15।।
दानं हि भूताभयदक्षिणायाः सर्वाणि दानान्यधितिष्ठति।।26।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 245)

संन्यासी अग्नि प्रयोग (हवन, भोजनपाक आदि) से रहित, नगर में अन्नार्थ–भिक्षार्थ जावे। आगामी कल के लिए अन्नभिक्षा का संग्रह न करे अर्थात् वर्तमान समय के लिए अन्न आदि का ग्रहण करने वाला हो, संग्रही न हो। मुनिभाव, शान्त भाव में एकाग्र रहे अर्थात् अचंचल अल्पभोजी, नियमित मात्रा में नियमित समय में खाने वाला तथा नियमित वस्तुओं

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

को खाने वाला हो, सर्वभक्षी नहीं, एक बार भोजन करने वाला बारबार खाने वाला नहीं, कपाल, खप्पर, कमण्डलु, वृक्षमूलनिवास भूमि के रंग के मटमैले काषाय गेरुए वस्त्र का सेवन करनेवाला, किसी पर निर्भर न रहने वाला, जनसमूह में रहने से सर्प भय की भाँति भय करना, उत्तमोत्तम वस्त्रों, सुखों से भय करना, नरक महा दुःख की भाँति, स्त्रियों से खटमलों की भाँति भय करना, अपमान से क्रोध न करे, न मान से प्रहर्षित हो–फूले। सब प्राणियों को अभय देने वाला हो, मरण की निन्दा न करे, न जीने की प्रशंसा। काल की प्रतीक्षा करे जैसे नौकर स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करता है, प्राणियों को अभयदक्षिणा का दान समस्त दानों के ऊपर रहता है, अतः संन्यासी को सब प्राणियों के लिए अभय दान देना चाहिये। ऐसा आचरण करने वाले को ब्राह्मण–ब्रह्म का जानने वाला संन्यासी कहते हैं।

प्रसार्येह यथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः।
तथेन्द्रियाणि मनसा संयन्तव्यानि भिक्षुणा॥
तमःपरिगतं वेश्म यथा दीपेन दृश्यते।
तथा बुद्धिप्रदीपेन शक्य आत्मा निरीक्षितुम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 326। 39, 40)

जैसे कछुआ अङ्गों को फैलाकर पुनः संकुचित करता–समेट लेता है, इसी प्रकार संन्यासी को अपनी इन्द्रियाँ मन से संयत करनी चाहिये। अन्धकार से पूर्ण घर जैसे दीपक से दीख जाता है उसी प्रकार बुद्धि दीपक से आत्मा (परमात्मा) दीख सकता है।

जनक आदि राजाओं का संन्यास ग्रहण–

जनक का संन्यास–

Scanned with CamScanner

विदेह राज्यं च तदा प्रतिष्ठाप्य सुतस्य वै।
यतिधर्ममुपासंश्चाप्यवसन् मिथिलाधिपः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 3।18।97)

मिथिलाधिप जनक राजा ने विदेह देश–मिथिलादेश का राज्य पुत्र को सौंपकर यतिधर्म–संन्यासधर्म संन्यासाश्रम का पालन किया।

पञ्चशिख संन्यासी तथा जनक उनके शिष्य–

अत्राप्युदाहरन्तीमितिहासं पुरातनम्।
भिक्षोः पंचशिखश्चेह संवादं जनकस्य च॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 319।3)

इस विषय में पञ्चशिख संन्यासी और जनक का पुरातन इतिहास उदाहरण रूप में है।

अम्बा की संन्यास ग्रहण की इच्छा, स्त्रीसंन्यास–

प्राव्राज्यमहमिच्छामि तपस्तप्स्यामि सुदुश्चरम्।

(महा०, उद्योगप० अम्बो० अ० 176।41)

अम्बिका ने कहा है कि मैं संन्यास चाहती हूँ। कठिन तप तपूँगी।

सुलभा संन्यासिनी–स्त्रीसंन्यास–

अथ धर्मयुगे तस्मिन् योगधर्ममनुष्ठिता।
महीमनुचचारैका सुलभा नाम भिक्षुकी॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 320।7)

उस धर्मयुग में योगाभ्यास में अभ्यस्त एक सुलभा संन्यासिनी पृथिवी पर विचर रही थी।

क्षत्रिया (क्षत्रवंशजा) स्त्री सुलभा संन्यासिनी हुई–

नास्मि वर्णोत्तमा जात्या न वैश्या नावरा तथा।
तव राजन्! सवर्णाऽस्मि शुद्धयोनिरविप्लुता॥

Scanned with CamScanner

को खाने वाला हो, सर्वभक्षी नहीं, एक बार भोजन करने वाला बारबार खाने वाला नहीं, कपाल, खप्पर, कमण्डलु, वृक्षमूलनिवास भूमि के रंग के मटमैले काषाय गेरुए वस्त्र का सेवन करनेवाला, किसी पर निर्भर न रहने वाला, जनसमूह में रहने से सर्प भय की भाँति भय करना, उत्तमोत्तम वस्त्रों, सुखों से भय करना, नरक महा दुःख की भाँति, स्त्रियों से खटमलों की भाँति भय करना, अपमान से क्रोध न करे, न मान से प्रहर्षित हो—फूले। सब प्राणियों को अभय देने वाला हो, मरण की निन्दा न करे, न जीने की प्रशंसा। काल की प्रतीक्षा करे जैसे नौकर स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करता है, प्राणियों को अभयदक्षिणा का दान समस्त दानों के ऊपर रहता है, अतः संन्यासी को सब प्राणियों के लिए अभय दान देना चाहिये। ऐसा आचरण करने वाले को ब्राह्मण—ब्रह्म का जानने वाला संन्यासी कहते हैं।

प्रसार्येह यथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः।
तथेन्द्रियाणि मनसा संयन्तव्यानि भिक्षुणा॥
तमःपरिगतं वेश्म यथा दीपेन दृश्यते।
तथा बुद्धिप्रदीपेन शक्य आत्मा निरीक्षितुम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 326। 39, 40)

जैसे कछुआ अङ्गों को फैलाकर पुनः संकुचित करता—समेट लेता है, इसी प्रकार संन्यासी को अपनी इन्द्रियाँ मन से संयत करनी चाहिये। अन्धकार से पूर्ण घर जैसे दीपक से दीख जाता है उसी प्रकार बुद्धि दीपक से आत्मा (परमात्मा) दीख सकता है।

जनक आदि राजाओं का संन्यास ग्रहण—

जनक का संन्यास—

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

विदेह राज्यं च तदा प्रतिष्ठाप्य सुतस्य वै।
यतिधर्ममुपासंश्चाप्यवसन् मिथिलाधिपः।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 3।18।97)

मिथिलाधिप जनक राजा ने विदेह देश–मिथिलादेश का राज्य पुत्र को सौंपकर यतिधर्म–संन्यासधर्म संन्यासाश्रम का पालन किया।

पञ्चशिख संन्यासी तथा जनक उनके शिष्य–

अत्राप्युदाहरन्तीमितिहासं पुरातनम्।
भिक्षोः पंचशिखश्चेह संवादं जनकस्य च।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 319।3)

इस विषय में पञ्चशिख संन्यासी और जनक का पुरातन इतिहास उदाहरण रूप में है।

अम्बा की संन्यास ग्रहण की इच्छा, स्त्रीसंन्यास–

प्राव्राज्यमहमिच्छामि तपस्तप्स्यामि सुदुश्चरम्।

(महा०, उद्योगप० अम्बो० अ० 176।41)

अम्बिका ने कहा है कि मैं संन्यास चाहती हूँ। कठिन तप तपूँगी।

सुलभा संन्यासिनी–स्त्रीसंन्यास–

अथ धर्मयुगे तस्मिन् योगधर्ममनुष्ठिता।
महीमनुचचारैका सुलभा नाम भिक्षुकी।।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 320।7)

उस धर्मयुग में योगाभ्यास में अभ्यस्त एक सुलभा संन्यासिनी पृथिवी पर विचर रही थी।

क्षत्रिया (क्षत्रवंशजा) स्त्री सुलभा संन्यासिनी हुई–

नास्मि वर्णोत्तमा जात्या न वैश्या नावरा तथा।
तव राजन्! सवर्णाऽस्मि शुद्धयोनिरविप्लुता।।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

प्रधानो नाम राजर्षिर्व्यक्तं ते श्रोत्रमागतः।
कुले तस्य समुत्पन्नां सुलभां नाम विद्धि माम्॥

(महा०, शान्तिप० अ० 320। 80, 81)

हे जनक राजन्! मैं ब्राह्मणवर्ण नहीं, वैश्या नहीं, न शूद्रा हूँ, तेरे वर्णवाली क्षत्रिया हूँ और पुरुष सम्पर्क से रहित हूँ—ब्रह्मचारिणी हूँ। राजवंशीय महात्मा प्रधान नाम नरेन्द्र को आपने सुना होगा उसके कुल में उत्पन्न हुई मुझ सुलभा को आप जानें।

वैदिक साहित्य pdf मे प्राप्त करने के लिए टेलीग्राम एप्लिकेशन मे वैदिक पुस्तकालय या vaidicbooks सर्च करें

वैदिक पुस्तकालय
वैदिक पुस्तकालय

॥यजुर्वेद॥
॥सामवेद॥
॥अथर्ववेद॥

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

वैदिक पुस्तकालय

तृतीय पार्श्व

वर्णव्यवस्था-संस्थान

चार वर्ण और उनके सामान्य कर्म–

ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये चाश्रितास्तपोदान–
धर्माग्निना शुद्धास्ते स्वर्गं यान्ति भारत!॥

(महा०, आश्रमेधिकप० अ० 91। 37)

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तप, दान, धर्म, अग्निहोत्र से शुद्ध होते हैं वे स्वर्ग अर्थात् सुखपूर्ण योनि या जन्म को प्राप्त होते हैं।

विज्ञप्ति–शूद्र को भी तप और अग्निहोत्र का अधिकार यहाँ कहा है।

कर्मानुसार वर्ण–

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 180।10)

वर्णों में कोई भेद नहीं, सब ही ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण समान हैं, ब्रह्म से प्रथम उत्पन्न हुए पश्चात् कर्मों से अलग-अलग वर्ण भाव को प्राप्त हुए।

ब्राह्मण चारों वर्णों की स्त्रियों से विवाह करने पर सन्तान ब्राह्मण–

चतस्रो विहिता भार्या ब्राह्मणस्य पितामह!।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च रतिमिच्छता॥
त्रिषु वर्णेषु जातो हि ब्राह्मणाद् ब्राह्मणो भवेत्।

(महा०, अनुशासनप० अ० 47। 4, 5)

Scanned with CamScanner

ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा ये चार स्त्रियाँ ब्राह्मण की होती हैं। इनमें से किसी के भी साथ विवाह कर सकता है और क्षत्रिया आदि तीनों वर्णों की भार्या से उत्पन्न सन्तान ब्राह्मण ही होती है।

वर्ण परिवर्तन—ऊँचे वर्ण से नीचे और नीचे वर्ण से ऊपर जाना—

विप्रो भवति धर्मात्मा क्षत्रियः स्वेन कर्मणा।
शूद्रोऽप्यागमसम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः॥
ब्राह्मणो वाऽप्यसद्वृत्तः सर्वसङ्करभोजनः।
ब्राह्मण्यं स समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 143)

धर्मात्मा क्षत्रिय भी कर्म से ब्राह्मण हो जाता है, शूद्र भी वेद पढ़ा हुआ और वैदिक कर्मों से युक्त हुआ ब्राह्मण बन जाता है। ब्राह्मण भी दुष्कर्मों से सर्वभक्षी होने से ब्राह्मणत्व को छोड़ कर शूद्र हो जाता है।

शक आदि क्षत्रिय से वृषल (कसाई, मांसभोजी–म्लेच्छ) हो गए—

शका यवनकम्बोजास्तास्ता क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात्॥21॥
द्राविडाश्च कलिङ्गाश्च पुलिन्दाश्चाप्युशीनराः।
कोलसर्पा महिषकास्तास्ताः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात्॥2॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 33)

शक, यवन, कम्बोज ये क्षत्रिय वंशज थे। ब्राह्मणों के अदर्शन—असत्संग से वृषल—हिंसावृत्ति म्लेच्छ बन गए। भारतान्तर्गत द्राविड़, कलिङ्ग, पुलिन्द, उशीनर, कोल—सर्प, महिषक क्षत्रिय वंशज थे वे भी ब्राह्मणों के अदर्शन—असत्सङ्ग,

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

से वृषल–हिंसावृत्ति म्लेच्छ बन गए।

तथा–

मेकला द्राविडा लाटाः पौण्ड्राः काण्वशिरास्तथा।
शौण्डिका दरदा दार्वाश्चौराः शबर बर्बराः॥17॥
किराता यवनाश्चैव तास्ताः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वमनुप्राप्ता ब्राह्मणानामदर्शनात्॥18॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 35)

मेकल, द्राविड, लाट, पौण्ड्र, काण्वशिर, शौण्डिक, दरद, दार्व, चौर, शबर, बर्बर, किरात, यवन, ये क्षत्रिय वंशज थे परन्तु ब्राह्मणों के अदर्शन–असत्सङ्ग से वृषल–हिंसा–वृत्ति म्लेच्छ बन गए।

और भी–

प्रजा वृषलतां प्राप्ता ब्राह्मणानामदर्शनात्।
एवं ते द्रविडे ऽऽ भीराः पुण्ड्राश्च शबरै सह॥

(महा०, आश्रमेधिकप० अ० 29।15)

द्रविड़, आभीर, पुण्ड्र, शबर ये लोग ब्राह्मणों के अदर्शन असत्सङ्ग, से वृषल–हिंसावृत्ति म्लेच्छ बन गए।

ततो ब्राह्मणतां यातो विश्वामित्रो महातपाः।
क्षत्रियः सोऽप्यथ तथा ब्रह्मवंशस्य कारकः॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 4)

विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गए और ब्राह्मण वंश के चलाने वाले बने।

ब्राह्मण्यं लब्धवांस्तत्र विश्वामित्रो महामुनिः।
सिन्धुद्वीपश्च राजर्षिर्देवापिश्च महातपाः॥
ब्राह्मण्यं लब्धवान् यत्र विश्वामित्रस्तथा मुनिः।

(महा०, शल्यप० गदाप० अ० 38।36, 37)

विश्वामित्र ने क्षत्रियत्व से ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया,

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

एवं सिन्धुद्वीप और देवापि तपस्वियों ने भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया।

मतङ्ग, चण्डाल से ब्राह्मण बने—

स्थाने मतङ्गों ब्राह्मण्यं चालभद् भरतर्षभ।
चण्डालयोनौ जातो हि कथं ब्राह्मण्यमवाप्तवान्॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 3।19)

चण्डाल योनि में उत्पन्न मतङ्ग ब्राह्मण बन गए।

पैजवन शूद्र ऋषि बन गए—

शूद्रः पैजवनो नाम सहस्राणां शतं ददौ।
ऐन्द्राग्नेन विधानेन दक्षिणामिति नः श्रुतम्॥

(महा०, शान्तिप० राज ध० अ० 60।39)

पैजवन शूद्र ने सौ सहस्र गौएँ दान दीं। इन्द्ररानी देवता वाले सूक्त से वह उन ऋग्वेद के सूक्तों का ऋषि हो गया।

शुनक का पुत्र वीतहव्य क्षत्रिय वंशज शौनक ऋषि ब्राह्मण बना।

शुनको नाम विप्रर्षिर्यस्य पुत्रोऽथ शौनकः।
एवं विप्रत्वमगमद् वीतहव्यो नराधिपः॥

(महा०, अनुशासन प० अ० 30।65, 66)

ब्राह्मबल क्षात्रबल से ऊँचा है—

धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्।
बलाबलं निनिश्चित्य तप एवं पर बलम्॥

(महा०, आदिप० चैतरथय प० अ० 177।45)

ब्राह्म तेज रूप बल के सम्मुख क्षात्र बल को धिक्कार है, बल अबल का विचार करने से ब्राह्म तप परम बल है।

मूल गोत्र चार—

मूलगोत्राणि चत्वारि समुत्पन्नानि पार्थिव!
अङ्गिरः कश्यपश्चैव वसिष्ठो भृगुरेव च॥

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

कर्मतोऽन्यानि गोत्राणि समुत्पन्नानि पार्थिव।
नामधेयानि तपसा तानि च ग्रहणं सताम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 296। 17-18)

मूलगोत्र चार उत्पन्न हुए हैं जो कि अङ्गिरा, कश्यप, वसिष्ठ और भृगु हैं। अन्य गोत्र कर्म से हैं। सत्पुरुषों के तप से वे नाम ग्रहण किए जाते हैं।

वंशनाश के कारण–

अनिज्यया कुविवाहै र्वेदस्योत्सादनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमणेन च॥
देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमणेन च॥
ब्राह्मणानां परिभवात् परिवादाश्च भारत!।
कुलान्यकुलतां यान्ति न्यासापहरणेन च॥
कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः॥
वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति कर्षन्ति च महद् यशः।
वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वृत्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्तात् क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥
गोभिः पशुभिरश्वैश्च कृष्या च सुसमृद्धहया।
कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः।

(महा०, उद्योग प० प्रजागार, अ०)

यज्ञ न करने, कुविवाह, वेद के त्याग से और धर्म के उल्लंघन से कुल अकुलता को प्राप्त हो जाते हैं। विद्वानों, पूजनीय स्थानों के धन वस्तु नाश से, ब्राह्मणों के धन हरण से और ब्राह्मणों की अवज्ञा से कुल अकुलता को प्राप्त हो जाते हैं।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

ब्राह्मणों पर दवाव डालने से और उनकी निन्दा से तथा धरोहर के हरण कर लेने से कुल अकुलता को प्राप्त हो जाते हैं। गौओं, पुरुषों धन से सम्पन्न कुल, आचार से हीन हुए कुल अकुलता, को प्राप्त हो जाते हैं। थोड़े धन वाले भी कुल वृत्त से हीन न हुए अकुलगणना में नहीं आते किन्तु महान् यश को प्राप्त होते हैं।

वृत्त की यत्न से रक्षा करे वृत्त अर्थात् धन आता और जाता है। धन से क्षीण जन क्षीण नहीं किन्तु आचार से क्षीण हुआ नष्ट ही है।

गौओं, पशुओं, घोड़ों, खेती से समृद्धि से युक्त हुए भी आचार हीन कुल उभरते नहीं हैं।

वैदिक साहित्य pdf मे प्राप्त करने के लिए टेलीग्राम एप्लिकेशन मे वैदिक पुस्तकालय या vaidicbooks सर्च करें

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

वैदिक पुस्तकालय

चतुर्थ पार्श्व

वेद-विद्यादि-संस्थान

वेद चार हैं–

साङ्गोपनिषदान् वेदांश्चतुराख्यानपञ्चमान्।

(महा०, वनप० अर्जुनाभिया० अ० 45। 8)

शिक्षा, व्याकरणादि अङ्गों और उपनिषदों सहित चारों वेदों और आख्यान को पढ़े हुए विद्वान्।

चारों वेदों के नाम–

यजुषामृचां साम्नां व गद्यानां च सर्वशः।
आसीदुच्चार्यमाणानां निःस्वनो हृदयङ्गमः॥

(महा०, वनप० अर्जुनाभिया० अ० 26।3)

उच्चारण किए जाते हुए यजुर्वेद के मन्त्रों, ऋग्वेद के मन्त्रों, सामवेद के मन्त्रों और गद्य अर्थात् अथर्ववेद के मन्त्रों का ध्वनिनाद हृदय में बैठता था।

यजुऋक्सामत्रिर्जुष्टमथर्वाङ्गिरसैस्तथा।

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 40)

यजुः, ऋक्, साम और अथर्वाङ्गिरस अर्थात् अथर्ववेद से सम्पन्न।

ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदश्च पाण्डव।
अथर्ववेदश्च तथा सर्वशास्त्राणि च॥

(महा० सभाप० लोकपाल सभाख्यान प० अ० 11।32)

ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद एवं सब शास्त्र।

वेद अनादि हैं और वैदिक ऋषि भी अनादि हैं–

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

अनादिनिधना विद्या वागुक्ता या स्वयम्भुवा।
ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 232।25)

स्वयम्भू परमेश्वर ने वेद वाणी अनादि और अनन्त प्रकट की। ऋषियों के नाम और उनकी वेदों में दृष्टियाँ भी स्वयम्भू ने प्रकट कीं।

वेदों का प्रकाश सृष्टि के आरम्भ में और वेदों से नामों तथा कार्यों का विधान।

नानारूपं च भूतानां कर्मणां च प्रवर्तनम्।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्मिमीते स ईश्वरः॥
नामधेयानि चर्षीणां याश्च वेदेषु दृष्टयः।
शर्वयन्ते सुजातानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 232।26)

ईश्वर ने वस्तुओं के नाम और कर्म वेद के शब्दों से निमार्ण किए। ऋषियों के नाम तथा उनकी वेदों में दृष्टियाँ भी प्रलय के अन्त अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में उनके लिये विधान कीं।

वेद अर्थ सहित पढ़ना श्रेयस्कर है–

यो वेदे च शास्त्रे च ग्रन्थधारणतत्परः॥
न च ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञस्तस्य-तद्धारणं वृथा॥
भारं स वहते तस्य ग्रन्थस्यार्थं न वेत्ति यः।
यस्तु ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञो नास्य ग्रन्थागमो वृथा॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष अ० 305।13,14)

जो मनुष्य वेद और शास्त्र के सम्बन्ध में पाठ कण्ठस्थ करने में ही तत्पर है वह ग्रन्थ के तत्त्व को नहीं जानता। उसका कण्ठस्थ पाठ व्यर्थ है जो अर्थ नहीं जानता वह तो उसके भार को ही उठाता है और जो ग्रन्थ के अर्थ तत्त्व को

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

जानता है उसका ग्रन्थ ज्ञान व्यर्थ नहीं है।

चारों वर्णों को वेद पढ़ाना चाहिए–

श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः।
वेदस्याध्ययनं हीदं तच्च कार्यं महत्स्मृतम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 327।48)

चारों वर्णों को वेद पढ़ावे, पढ़ाते समय ब्राह्मण को सब से आगे की पंक्ति में बिठावे। यह वेद का अध्ययन और अध्यापन कार्य ऊँचा माना गया है।

वेद में सुरापान मांस भक्षण आदि का विधान नहीं है–

सुरा मत्स्या मधुमांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्त्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु कल्पितम्॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 265।9)

मद्य, मछली, मधु–मद्य, मांस, आसव–मही मद्य, मांसौदन, धूर्तजनों ने चलाया है। ये वेदों में नहीं कहे हैं।

विद्या के चार प्रकार–

त्रयी चान्वीक्षिकी चैव वार्ता च भरतर्षभ!।
दण्डनीतिश्च विपुला विद्यास्तत्र निदर्शिताः॥

(महा०, शान्तिप० राजधर्म० अ० 59।33)

त्रयी विद्या ऋक्–युजः, सामरूपी वेद, आन्वीक्षिकी–दर्शनविद्या, वार्ता–देशदेशान्तर भूगोल, खगोल, दण्डनीति राजनीति ये चारों विशाल विद्याएँ प्रदर्शित की हैं।

विद्या प्रचार में राजनीति का आश्रय–

न विद्यां प्राप्नुयात् कश्चिद् यदि दण्डो न पालयेत्।

(महा०, शान्तिप० राजधर्म अ० 15।40)

यदि दण्ड विधान न हो तो कोई विद्या को प्राप्त न करे, अर्थात् अनिवार्य विद्या सार्वजनिक सामान्य विद्या सब के लिए

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

होनी चाहिए। इस विषय में राजनियम होना चाहिये जो न पढ़े वह दण्डनीय हो। हाँ, विशेष विद्याएँ योग्य व्यक्ति ही पढ़ें।

दर्शन विद्या के अधिकारी–

पृथिवीमिमां यद्यपि रत्नपूर्णां दद्यान्नदेयं त्विदमसंयताय।
जितेन्द्रियायैतदसंशयं ते भवेत् प्रदेयं परमं नरेन्द्र!॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 308।37)

रत्नपूर्णा पृथिवी भी क्यों न दे परन्तु इस दर्शन विद्या को अयत्नशील आलस्यपूर्ण मनुष्य को न दे। हाँ, जितेन्द्रिय, संयमी जन को देना चाहिए।

ऊँची विद्या प्रदान में शिल्पों की परीक्षा–

नापरीक्षितचारित्रे विद्या देया कथञ्चन।
यथा हि कनकं शुद्धं तापच्छेद निकर्षणैः–
परीक्षेत तथा शिष्यानीक्षेत्कुलगुणादिभिः॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 317)

जिसके चरित्र का ज्ञान न हो उसको कभी विद्या न देना चाहिये। जैसे शुद्ध सोने की परीक्षा तपाने, काटने व घिसने से करते हैं ऐसे शिष्यों की परीक्षा कुल और गुण आदि से करनी चाहिये।

शिक्षा–

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्॥
निवृत्तिः कर्मणः पापात् सततं पुण्यशीलता॥
सद्वृत्तिः समुदाचारः श्रेय एतदनुत्तमम्।
सर्वोपायात्तु कामस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः।
कार्यः श्रेयोर्थिना तौ हि श्रेयोघातार्थमुद्यतौ॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 329। 6-10)

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

विद्या के समान नेत्र नहीं, सत्य जैसा तप नहीं, राग के सदृश दुःख नहीं, पाप कर्म से अलग रहना, निरन्तर पुण्यशील रहना, सद्व्यवहार का आचरण करना सर्वोत्तम कल्याण साधक है। कल्याण के इच्छुक जन को कामवासना और क्रोध को समस्त प्रयत्नों से वश में करना चाहिये, क्योंकि दोनों कल्याण के घातक हैं।

कलाकौशल–

छाता–

पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि।

(महा०, आश्वमेधिकप० अ० 64।3)

शिर पर भूरे रंग वाले आतपत्र-छाते को धारण किये हुए।

गर्ग ऋषि 64 कलाओं को जानते थे–

चतुषःष्ट्यंगमददात्कलाज्ञानं ममाद्भुतम्।
सरस्वत्यास्तटे तुष्टो मनोयज्ञेन पाण्डव!॥

(महा०, अनुशासनप० अ० 18।38)

हे पाण्डव! सरस्वती नदी के तट पर मनोयज्ञ से प्रसन्न हुए गर्ग ने मुझे चौसठ कलाओं को सिखलाया।

सोने चाँदी का पानी पात्र पर चढ़ाना या सोने व चाँदी के पात्र साँचे में ढालकर बनाना–

सौवर्णं चापि राजतं यथा भाण्डं निषिच्यते।
तथा निषिच्यते जन्तुः पूर्वकर्मवशानुगः॥

(महा०, शान्तिप० अ० 290।11)

जैसा पात्र पर सोने या चाँदी का पानी फेरने से सुनहेरा या रूपहेला हो जाता है वैसे ही प्राणी पूर्वकर्मों के वश हुआ वैसा बन जाता है।

अथवा–

जैसे सोने या चाँदी का पात्र साँचे में जाता है वैसे प्राणी

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

भी पूर्वकर्मानुसार ढल जाता है–बन जाता है।

गृह निर्माणकला (मकानकला)–

ब्राह्मणस्थपतिभ्यां च निर्मितं यन्निवेशनम्।
तदावसेत् सदा प्राज्ञो भवार्थी मनुजेश्वर!

(महा०, अनुशासनप० अ० 104।118)

हे राजन्! ब्राह्मण और स्थपति अर्थात् इंजीनियर और मिस्त्री के द्वारा जो घर बना हो उसमें ऐश्वर्य या अभ्युदय का चाहने वाला बुद्धिमान् बसे।

बहुत बड़ी-बड़ी गाड़ी–

रथैस्तैर्नगरप्रख्यैः पताकाध्वजशोभितैः।

(महा०, शान्तिप० राजध० अ० 48।2)

पताका ध्वज से सुशोभित नगर समान बड़े रथों से यात्रा।

विमान से देशाटन–

स देशान् विविधान् पश्यंश्चीनहूणनिषेवितान्।
आर्यावर्तमिमं देशमाजगाम महामुनिः॥
पितुर्वचनमाज्ञाय तमेवार्थं विचिन्तियन्।
अध्वानं सोऽतिचक्राम खचरः खेचरन्निव॥

(महा०, शान्तिप० मोक्ष० अ० 325।15,16)

व्यास के पुत्र शुकदेवजी विमान द्वारा चीन हूण जातियों से सेवित विविध देशों को देखते हुए इस आर्यावर्त देश में आये। पिता व्यास के वचन को स्वीकार कर उसी अभिप्राय को ध्यान में रख मार्ग को पूरा किया, आकाश में उड़ते हुए पक्षी की भाँति वे चलते चले आए।

विज्ञप्ति–यहाँ "खचरः खेचरन्निव" आकाश में उड़ते हुए पक्षी की भाँति उपमा से शुकदेवजी का विमान द्वारा भिन्न-भिन्न देशों के ऊपर से उड़ते हुए आना सिद्ध है।

वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner

देवविमान–

एते हि देवा वसवो विमानान्यास्थाय
सर्वे ज्वलिताग्निकल्पा:॥

ये वसु नामक देव विमानों में सवार होकर सब ज्वलित अग्नि के समान हैं।

विज्ञप्ति–वर्ष 1951 ई० में उड़न तश्तरियों की चर्चा समाचार पत्रों में प्रकाशित होती रही। वे उड़न तश्तरियाँ प्रकाशमान् थीं जैसा कि यहाँ कहा है, वे देवविमान में जो एक लोक से दूसरे लोक में जाने वाले ग्रह नक्षत्रों की भाँति जो विमान उड़ते दिखलाई पड़ते हैं वे खेटयान कहलाते हैं जैसे विशेषकर आचार्य ने कहा है–

देशाद्देशान्तरं तद्वद् द्वीपाद् द्वीपान्तरं तथा।
लोकाल्लोकान्तरं चापि योऽम्बरे गन्तुमर्हति॥
स विमान इति प्रोक्त: खेटशास्त्र विदांवरै:॥

एक देश से दूसरे देश को, उसी प्रकार एक द्वीप से दूसरे द्वीप को और एक लोक से दूसरे लोक को भी जो आकाश में जा सकता है। वह खेट शास्त्र के जानने वालों के द्वारा विमान कहलाता है। अस्तु! महर्षि चक्रामणि ने "खेटयान प्रदीपिका" पुस्तक भी लिखी थी।

वैदिक पुस्तकालय
वैदिक पुस्तकालय
वैदिक पुस्तकालय
वैदिक पुस्तकालय

Scanned with CamScanner